The Academic
International Journal of Multidisciplinary Research

An Online Peer Reviewed / Refereed Journal
Volume 2 | Issue 8 | August 2024
ISSN: 2583-973X (Online)
Website: www.theacademic.in

दलित चिंतन की परम्परा में ओमप्रकाश वाल्मीकि की भूमिका

प्रोफेसर मीरा कश्यप
विभागध्यक्ष हिन्दी
के0जी0के0 (पी0जी0)
कालेज मुरादाबाद

प्रदीप कुमार सागर शोधार्थी
के0जी0के0 (पी0जी0) कालेज मुरादाबाद
ग्राम बुद्धनगर पो0 शरीफनगर
pradeepkumarsagar9724@gmail.com

दलित चिंतन की परम्पराः–

दलित एक ऐसा शब्द है जिसको सुनते ही हजारो सवाल खड़े जो जाते हैं और उनके समाधान के लिए अन्दर ही अन्दर द्वन्द्व प्रारंभ हो जाता है, लेकिन आज भी गैर दलित इसके लिए तमाशाई बने हुए हैं। दलित की यूँ तो कोई जाति नहीं होती जो शोषित, पीड़ित, दबा–कुचला, मानवीय अधिकारों से वंचित, सामाजिक स्तर पर दुत्कारा हुआ है वह दलित है। परन्तु भारतीय हिन्दू समाज में जिस समाज को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है, अछूत समझा जाता है, अनुसूचित जाति के रूप में जाना जाता है, वह सब दलित के दायरे में आते हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में एक विशेष जाति समूह को दलित की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया गया है, जो किसी भी प्रकार से न्यायोचित नहीं लगता। भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद दलितों की स्थिति में सुधार के लिये अनेक विद्धजनों ने संघर्ष किया, जिसके परिणामस्वरूप दलित समाज से अनेक लोग बड़े–बड़े सम्मानित पदों तक पहुँचे जिससे उनकी स्थिति मजबूत हुई और उन्होनें सामाजिक, राजनीतिक व आर्थिक रूप से भारतीय समाज को प्रभावित किया, लेकिन उस वर्णवादी मानसिकता का क्या जिसकी दृष्टि में आज भी दलित पढ़ा–लिखा, धनवान, संस्कारी होने के बावजूद भी सम्मान का अधिकारी नही। जब तक हमाने मन में ऐसी मानसिकता रहेगी तब तक हम समतामूलक राष्ट्र का निर्माण नहीं कर सकते।

दलितो की दयनीय दशा में सबसे बड़ी भूमिका मनुस्मृति की मानी जाती है मनुस्मृति के नियमों के आधार पर दलितो के साथ सदियो से जानवरो से भी बदतर व्यवहार किया गया। ऐसे व्यवहार की कल्पना मात्र से ही रूप कॉप जाती है, जिन्होनें इसको सहा है उन पर क्या बीती होगी। हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था की इस अमानवीय सच्चाई के उत्पीड़न से ही दलित चिंतन का विकास हुआ है।

जब कोई अमानवीय कृत्य मर्यादा की अन्तिम सीमा को पार कर जाता है और व्यक्ति की सहन शक्ति समाप्त होने लगती है तो वह प्रतिकार करता है।

दलित चिंतन की बुनियाद तो प्राचीन काल में ऋषि शम्बूक के द्वारा रखी जा चुकी थी। रामराज्य में भी शूद्रो को तप–यज्ञ करने की अनुमति नहीं थी। शम्बूक ने तप करके वर्ण व्यवस्था की जंजीरो को तोड़ने का पहला प्रयास किया, जिसकी कीमत उन्हें अपने प्राणों की आहूति देकर चुकानी पड़ी। शम्बूक द्वारा चलायी दलित चिंतन की परम्परा का सही बीजारोपण मक्खलि गोशाल के द्वारा किया गया। शुद्रो की शिक्षा के लिए इन्होनें ''मक्खशालाओं का निर्माण किया। रविदास जी कहते है कि '' चल मन हरि चटासल पढ़ाऊ'' यह चटसाल मक्ख नामक आजीवक स्थलो का ही परिणाम है, जिसकी आग सबसे तेज बौद्धकाल में दिखाई देती है। ब्राहम्णवाद को सबसे करीरी चोट बौद्धकाल में लगी। बौद्धकाल के प्रवर्तक गौतम बुद्ध ने सबको शिक्षा का समान अधिकार दिया जिसके लिए तक्षशिला व नालन्दा जैसे विश्वविख्यात विद्यालयों का निर्माण किया गया।

आठवीं शताब्दी में भारतीय इतिहास में धार्मिक, राजनीतिक, व सामाजिक दृष्टि से एक नये युग की शुरूआत हो रही थी। इस समय बौद्ध धर्म की कई शाखाएं स्थापित हो चुकी थी, जिसमें वज्रयानी शाखा से सम्बंध रखने वाले सिद्ध कहलाये जिनकी संख्या 84 थी। सिद्धदो ने सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में क्रांति ला दी। इन्होनें ब्राहम्णवादी व्यवस्था की जंजीरो को तोड़ा व जनभाषा में साहित्य लिख कर वाह्य आडम्बरों की वर्जनाओं को तोड़ा।

'' गंगा के नहाये कहो को नर तरिगे, मछरी न तरी जाको पानी में घर है।''

सिद्धों ने दोहाकोषो के माध्यम से समाज में फैली कुरीतियों व आडम्बरों का खंडन करके दलितो को ऊपर उठाने का प्रयास किया। सिद्धों में अधिकतर सन्त शूद्र ही थे इसलिए जाति का खडंन स्वाभाविक ही था। सिद्धो में सबसे प्रसिद्ध सरहपा थे जिन्होंने अपने आक्रामक व तीखे स्वर से वर्ण व्यवस्था का विरोध किया। इस संबंध में विश्वम्भर नाथ लिखते है ''सरह की कविता वर्जना विरोधी कविता है, ब्राहम्ण व्यवस्था विरोधी भी। वर्णमार्गी ब्राहम्णवादी व्यवस्था पर सरह की वाममार्गी कविता ने मूलोच्छेदक प्रहार किए। ''

आदिकाल के नाथो, सिद्धो ने जिस दलित चिंतन की धारा को चलाया था उसे भक्तिकाल के निर्गुण सन्तो ने पल्लवित किया। भक्ति काल में दलित चिंतन के सबसे बड़े उन्नायक कबीर व रविदास माने जाते है। जिन्होने अपने साहित्य के माध्यम से वर्ण व्यवस्था पर करारी चोट की। सर्वप्रथम रामानंद ने सभी जातियों के योग्य व्यक्तियों को अपना शिष्य बनाकर जातिवाद को तोड़ा। नामदेव समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करते हुए कहते है कि –

'' नाना वर्ण गँवा उनका एक वर्ण दूध
तुम कहाँ के ब्राहम्ण हम कहाँ के सूद।।

कबीर दास दलित चेतना के सवाहंक के रूप में आये इन्होने ब्राहम्णो के भेदभाव मूलक व्यवहार का जोरदार खण्डन किया। कबीरदास जातीय भेदभाव व छुआछूत के विरूद्ध अपना स्वर तेज करते हुए ब्राहम्णों को जोरदार फटकार लगाइ।

'' एक बूँद एकै मलमूतर, एक चाम एक गूदा।
एक ज्योति थै सब उत्पना, कौन बाम्हन कौन सूदा।।

कबीर के समकालीन रविदास भी भारतीय संस्कृति में व्याप्त पुरोहित वर्ग के वर्चस्व का विरोध करते हैं। रविदास ने मूर्तिपूजा का खंडन करते हुए कर्म व श्रम का सिद्धान्त दिया। जब–जब ब्राहम्णवादी सोच वाले इनसे टकराये तब–तब रविदास ने अपने ज्ञान से उनके घमंड को चकनाचूर किया। संत रविदास बेगमपुरा की सकंल्पना का निर्माण करते है, जहां किसी प्रकार का दुख, भेदभाव, तथा ऊँच–नीच न हो। रविदास वर्ण व्यवस्था व जातिवाद का विरोध ज्ञान के द्वारा शालीनता से करते हैं। संत रविदास ने अपने साहित्य में जो दलित चिंतन किया, वह वर्तमान दलित चिंतन की आधार शीला बना।

कबीरदास व रविदास की दलित चिंतन की यह धारा आगे चलकर दादूदयाल, नानक, पीपा, चोखमोला के बाद रीतिकाल में सूख गई थी, लेकिन दक्षिण भारत के कुछ सन्तों ने इस धारा को जीवित रखा, जिसमें संत वेमना, वीरब्रम्हा, दूदेकूला सिद्धय्या, घासीदास आदि के साथ–साथ ईश्वरम्मा व सुन्दरीमणि विदुषी महिलाएं भी इस परम्परा में अपनी भूमिका निभा रही थी। आधुनिक काल में एक बार फिर दलित चिंतन का स्वर ज्योतिबा फूले, पेरियार, अछूतानन्द, डा0 अम्बेडकर, ललई सिह यादव, के रूप में इतनी तेजी से उभरा की देश के कोन–कोन में इसकी गूँज सुनाई दी।

यह अंग्रेजी शासन का युग था, जिसने दलितों की मुक्ति के द्वार पर लगे ताले खोलने का प्रयास किया। ''ब्रिटिश सरकार द्वारा लागू की जा रही शिक्षा नीति का उददेश्य भारत वासियों को यूरोपीय साहित्य और विज्ञान से परिचित कराना है।'' यह आदेश 1835 में गवर्नर जनरल लार्ड विलियम वैटिंक ने दिया। इसी आदेश के द्वारा दलितों को शिक्षित होने का अवसर प्राप्त हुआ। शिक्षा के महत्व के विषय में दलित चिंतन के नायक फूले कहते है कि

''विद्या बिना मति गई
मति बिना नीति गई
नीति बिना गति गई
गति बिना चित्त गया
चित्त बिना चरमराये शूद्र
एक अविद्या ने किए कितने अनर्थ।।''

ज्योतिबा फूले व सावित्री बाई ने दलितो व महिलाओं के लिए स्कूल खोलकर उन्हें अन्धकारमय जीवन से निकालकर उजाले की ओर लाने का प्रयास किया। फूले ने ''गुलामगिरी'' लिखकर ब्रहाम्णवादी धर्मशास्त्रो में अवैदिक तत्वों की पेाल खोली जो एक वर्ग को नीचा और दूसरे वर्ग को ऊँचा स्थान देते है। बुद्ध और रविदास की परम्परा का निर्वाह करने वाले अछूतानंद ने दलित कौम को अज्ञानता की नींद से जगाने के लिए ''आदि हिन्दू आन्दोलन'' चलाया। अछूतानन्द मनुवादी व्यवस्था के घोर विरोधी थे यह मनुस्म्ति के विषय में लिखते है कि :–

''निसदिन मनुस्मृति ये हमको जला रही है
ऊपर न उठने देती नीचे गिरा रही है
ब्राहम्ण व क्षत्रियों को बनाया अफसर
हमको पुराने उतरन पहनो बता रही है
दौलत कभी न जोड़े गर हो तो छीन ले वह
फिर नीच कह हमारा दिल भी दुखा रही है
कुत्ते व बिल्ली मक्खी से भी बना के नीचा
हाँ शोक, गाँव के बाहर हमको बसा रही है।

आधुनिक काल में दलित चिंतन की धारा को बढ़ाने वाले नारायण गुरू, हीरा डोम, पेरियार, बिहारीलाल हरित आदि महापुरूष हैं। इन्होनें दलितों की उन्नति के लिए रूढ़िवादी परम्परा का विरोध किया। पेरियार कहते है कि रामायण, ईश्वर यह सब ब्राहम्णो के काल्पनिक पात्र है, जिससे उनका धंधा चल रहा है। पेरियार किसी प्रकार की अंधश्रद्धा, अतार्किकता को स्वीकार नहीं करते। इनकी अभिव्यक्ति के कारण 1970 में यूनेस्को ने इन्हे ''पूर्वी ऐशिया का सुकरात''व रूढ़िवादी रीति–रिवाजो का कट्टर दुश्मन कहा है। दलित चिंतको में डा0 अम्बेडकर सबसे बड़े उन्नायक माने जाते हैं। समतामूलक समाज के निर्माण में सबसे बड़ी भूमिका निभाने वाले अम्बेडकर से ही वर्तमान दलित चिंतन की विचाराधारा का प्रारंभ होता है। अम्बेडकर समाज में जमीनी परिवर्तन चाहते थे न कि किताबों और सम्मेलनों तक समिति परिवर्तन। अम्बेडकर का विश्वास था कि जब तक भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों को राजनीतिक अधिकार प्राप्त नहीं होगें तब तक सामाजिक मुक्ति की कल्पना संभव नहीं। इसलिए अम्बेडकर ने द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में अछूतो के लिए पृथक निर्वाचन की मांग कर दी जिसका गांधी ने विरोध किया। लेकिन अंग्रेजी सरकार ने अम्बेडकर के अकाटाय तर्को के कारण पृथक निर्वाचन देने की घोषणा की। गांधी इसके विरोध में आमरण अनशन पर बैठ गये। गांधी की जान बचाने के लिए डा0 अम्बेडकर ने समझौता कर लिया।

अम्बेडकर ने पृथक निर्वाचन की माँग छोड़ दी लेकिन पूना पैक्ट में आरक्षित सीटों की संख्या 78 से बढ़वाकर 148 करवा ली। अम्बेडकर ने दलित समाज की मुक्ति व समतामूलक राष्ट्र के लिए भारतीय संविधान को लिखकर एक मार्ग प्रशस्त किया जिसके लिए राष्ट्र उनका सदैव ऋणी रहेगा।

अम्बेडकर के बाद मंद पड़ चुकी दलित चिंतन की परम्परा ने 1970 के दशक में एक बड़ी छलाँग लगाई। बाबूराव बागुल का 193 में आया कहानी संग्रह '' ज्वहामी जात चोराली'' इस दिशा में पहला कदम था जिसमें एक क्रूर समाज का चित्रण किया गया है। योगीराज बाघमारे, केशव मेश्राम, दया पवाँर जैसे मराठी लेखको ने दलित आंदोलन के द्वारा सदियो से सोई मानवता को जगाने का कार्य किया। आगे चलकर ''दलित पैंथर'' जैसे युवा संगठन के कारण दलित साहित्य में आक्रामकता तथा विद्रोह की आग दिखाई दी। हिन्दी में दलित साहित्य का प्रारंभ कविताओं से माना जाता है। भारतीय दलित साहित्य मंच दिल्ली द्वारा प्रकाशित ''पीडज्ञ जो चीख उठी'' काव्य संग्रह दलित कविता की दृष्टि से अविस्मरणीय है। 1990 के दशक में दलित साहित्य अपने चरम की ओर अग्रसर हो रहा था जिसमें डा0 एन0सिंह, जयप्रकाश कर्दम, ओमप्रकाश वाल्मीकि कवँल भारती आदि दलित

लेखक अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहे थे। डा0 एन0 सिंह अपने काव्य संग्रह की कविता के माध्यम से ब्राहम्णवादी व्यवस्था पर प्रहार करते है।

''मेरी झोली में होती है
भूख बेवसी और लाचारी
इसलिए मेरे हाथ की कुदाल
धरती पर कोई नींव खोदने से पहले
कब्र खोदेगी उस व्यवस्था की
जिसके संविधान में लिखा है
तेरा अधिकार सिर्फ कर्म में श्रम में है
फल पर तेरा अधिकार नहीं।

दलितों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार की दुखद पीड़ा को मोहनदास नैमिशराय ने ''अपने –अपने पिंजरे'' नाम से पहली दलित आत्मकथा लिखी। इसके बाद ओमप्रकाश वाल्मीकि ने जातिवाद की पीड़ा से आहत होकर ''जूठन''आत्मकथा लिखकर दलित मुक्ति सघर्ष को बढ़ाने का कार्य किया। दलित चिंतन के परिप्रेक्ष्य में जयप्रकाश कर्दम ने प्रथम दलित उपन्यास ''छप्पर'' लिखकर इसको और मजबूत किया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी चली आ रही ब्राहम्णवादी व्यवस्था पर रूपनारायण सोनकर का उपन्यास ''सुअर दान'' करारी चोट करता है। यह गोदान के मिथक को तोड़ता हुआ साहित्य जगत में हलचन मचा देता है।

दलित चिंतन में ओमप्रकाश वाल्मीकि की भूमिका :–

सन 14990 के दशक में दलित साहित्य एक आन्दोलन का रूप ले रहा था, जिसमें अनेक दलित लेखक अपनी भूमिका निभा रहे थे। डा0 अम्बेडकर को अपना आर्दश मानने वाले व उनके विचारो से ओत–प्रोत ओमप्रकाश वाल्मीकि ने दलित चिंतन में अपनी महत्पूर्ण भूमिका निभाई। वाल्मीकि हिन्दी दलित साहित्य के प्रतिनिधि कवि माने जाते हैं। इन्होंने दलित चिंतन को एक नया आयाम दिया। वाल्मीकि ने अपने साहित्यिक जीवन का प्रारंभ काव्य से किया। हिन्दी साहित्य में दलित कविता को स्थापित करने का श्रेय वाल्मीकि को जाता है। वाल्मीकि ने अपने काव्य के माध्यम

से जातिवाद, वर्णव्यवस्थ, कर्मकाण्डो की जड़ो पर गहरा प्रहार किया। इन्होनें जो अतीत में कष्टदायी पीड़ा सही थी उसी का रूप इनकी कविताओं में झलकता है।

''गहरी पथरीली नदी में
असंख्य मूक पीड़ाएं
कसमसा रही हैं
मुखर होने के लिए रोष से भरी हुई
बस्स बहुत हो चुका
चुप रहना
निरर्थक पड़े पत्थर
अब काम आयेगे सन्तप्त जनो के।''

वाल्मीकि ने कविता, कहानी, आत्मकथा, नाटक, आलोचना आदि विधाओं में लेखन कार्य किया। वाल्मीकि ने कहानियों के माध्यम से दलितों के जीवन संघर्ष की कहानी को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है। इनकी कहानियों में दलितो व सवर्णो के बीच अनर्विरोध को दर्शाया गया है, कि किस प्रकार सवर्ण दलितों का आर्थिक व सामाजिक शोषण करते आये हैं। वर्तमान समय में भी दलितो के साथ अनेंक घटनाएं घट रही हैं, जिस पर सामन्तवादी लोगों का सकारात्मक रूख देखने को नहीं मिलता, उनकी मानसिकता किस प्रकार की है इस बात का अंदाजा वाल्मीकि की कहानी ''पच्चीस चौका डेढ़ सौ'' से लगाया जा सकता है। ''मैन्ने तेरे बुरे वखत में मदद करी थी ईब तू ईमानदारी से सारा पैसा चुका देना। सौ रूपये पर हर महीने पच्चीस रूपये ब्याज के बनते है। चार महीने हो गये। ब्याज–ब्याज के हो गये पच्चीस चौका डेढ़ सौ। तू अपणा आदमी है तेरे से ज्यादा क्या लेना। डेढ़ में से बीस रूपये कम कर दे बचे एक सौ तीस। बीस रूपये की तेरे लिए छूट है। चार महीने का ब्याज एक सौ तीस अभी दे दे, बाकी रहा मूल जिब होगा दे देणा। महीने के महीने ब्याज देते रहणा।''

वाल्मीकि ने अपनी कहानियों में दलित जीवन की अवस्था का चित्रण किया है। वाल्मीकि दलित साहित्यकार के रूप में चर्चित होने लगे थे लेकिन जो प्रसिद्धि ''जूठन'' से प्राप्त हुई उससे वह दलित ही नहीं पूरे हिन्दी साहित्य में प्रसिद्ध हो गये। जूठन दलित साहित्य में एक मील का पत्थर साबित हुई जिसमें सवर्ण समाज के अमर्यादित, घिनौने रूप को वाल्मीकि ने बड़ी बेवाकी से दिखाया

है। दलित समाज को जगाने के लिए यह पाखण्ड, पूजापाठ, का विरोध करते है। वाल्मीकि ने आत्मा तक को छलनी कर देने वाली यातनाओं को सहा है उन्होनें जो भोगा उसका एक प्रसंग देखिए। 'हेडमास्टर ने लपककर मेरी गर्दन दबोच ली थी उनकी उंगलियो को दवाब मेरी गर्दन पर बढ़ रहा था, जैसे कोई भेड़िया बकरी के बच्चे को दबोचकर उठा लेता है। कक्षा से बाहर खींचकर उसने मुझे बरामदे में ला पटका। चीखकर बोले। जा लगा पूरे मैदान में झाड़ू नही ंतो गांड में मिर्ची डाल के स्कूल से बाहर काढ़ (निकाल) दूंगा।'' सवर्ण मानसिकता से दलित समाज का किस प्रकार से उत्पीड़न हो रहा था यह प्रसंग उसकी झलक मात्र है।

जूठन भारतीय समाज में व्याप्त अमानवीयता तथा शोषण को समझने का प्रमुख दस्तावेजहै। वाल्मीकि जातिप्रथा, सलाम प्रथा, पशुबलि आदि का कड़ा विरोध करते है। वह बताते है कि दलितों से सवर्ण ही भदेभाव नहीं करते बल्कि समाज आपस में भी भेदभाव करता है जो उनकी एकता के लिए सबसे बड़ा खतरा है। एक धोबी वाल्मीकि के कपड़े धोने से इनकार कर देता है। यह सब दलित समाज में बुद्धिहीनता, अंधविश्वास, रूद्धिवादी परम्परा, अशिक्षा के कारण ही हो रहा है। इसलिए वाल्मीकि दलित समाज की सारी समस्याओं का समाधान शिक्षा में ढूढते है। जब तक दलित समाज पढ़ा लिखा नहीं होगा तब तक वह अपने अधिकारों के विषय में नहीं जान पायेगा। इसलिए इन मिथ्या आडम्बरों से निकलने का एक मात्र उपाय शिक्षित होना है।

निष्कर्ष

ओमप्रकाश वाल्मीकि ऐसे साहित्यकार है जिन्होनें वर्णव्यवस्था के क्रुर दंश को सहा है। वाल्मीकि ने जितनी सरल और स्पष्ट भाषा में उस पीड़ादायक अमानवीय व्यवहार का विरोध किया है। वैसा शायद ही कोई और कर पाता। वाल्मीकि ने सदियो से चली आ रही रूढिवादी परम्पराओं का खंडन करते हुए दलित समाज को वाहय आडम्बरों से मुक्त होने का मार्ग दिखाया। इनके साहित्य में धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक आदि समस्याएं दिखाई देती है। वाल्मीकि के साहित्य में दलित चिंतन का स्वर हिन्दी साहित्य में भी महत्वूपर्ण माना जाता है। इनके साहित्य ने दलितों के अन्दर भरी हीन भावना को बाहर निकालने का काम किया। जिस वर्ण व्यवस्था के अमानवीय बंधनो से दलित समाज जकड़ा हुआ था, उन बंधनो को तोड़कर दलित समाज को मुक्ति का मार्ग दिखाया। जिस प्रकार के अत्याचार दलितों पर हो रहे थे उससे किसी भी समतावादी का मन द्रवित हो उठता, फिर वाल्मीकि तो मुक्तभोगी थे। इसलिए विरोध होना स्वाभाविक था। वाल्मीकि का साहित्य चिंतन करने का साहित्य

है जो अन्याय के खिलाफ खड़ा हुआ है तथा यह ऐसे समाज की संकल्पना करता है। जहां हर व्यक्ति अपनी वैयक्तिक भिन्नताओं के साथ समान रूप से एक सार्थक जीवन व्यतीत कर सकें।

संदर्भः–

1 डा0 विष्वम्भर नाथ उपाध्याय, सरहपा पृ–51

2 स0 माताप्रसाद हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा पृ0–42

3 कबीर ग्रन्थावली स0 श्यामसुन्दर दास पृ0–82

4 कवॅल भारती दलित विमर्श की भूमिका पृ0–112–113 से उदधृत

5 डा0 एन0 सिंह सतह से उठते लोग पृ0–11

6 ओमप्रकाश वाल्मीकि बस्स बहुत हो चुका आवृत्ति 2017 पृ0–80

7 ओमप्रकाश वाल्मीकि सलाम पाँचवा संस्करण 2020 पृ0–81

8 ओमप्रकाश वाल्मीकि जूठन पहला खण्ड चौहदवा संस्करण–2019 पृ–15